वैश्विक स्तर पर हिंदी का भविष्य

डॉ.एस कृष्ण बाबु
- अध्यक्ष, वाजा ए पी एवं
दक्षिण भारतीय राजभाषा संस्थान
मो॰ - 08885990444

इस संसार की किसी भी भाषा का भविष्य उस भाषा के प्रति उसे बोलनेवाले लोगों के प्रेम, आदर एवं सम्मान की भावनाओं पर निर्भर रहता है। यदि वे लोग उस भाषा को अपनी अन्य परिचित भाषाओं की तुलना में अधिक महत्व देते हुए उसको जीवंत बनाने की दिशा में सक्रिय प्रयास करते हैं तथा उसके प्रचलन के लिए निष्ठापूर्वक वैविध्यपूर्ण चेष्टाएँ करते हैं तो उस भाषा के भविष्य का उज्ज्वल होना संभव हो सकता है। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठ सकता है कि किसी के प्रति किसी की भविष्यवाणी कहाँ तक सच हो पायेगी? वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर देना अत्यंत कठिन है। ऐसी स्थिति में किसी एक विशेष भाषा के भविष्य का अनुमान लगाना कितना कठिन होता है, यह बात स्वत: स्पष्ट है| कुछ विद्वानों का तर्क यह है कि जिन भाषाओं के अंतर्गत मानव जीवन के विविध विषयों से संबंधित एवं मानव समाज के विविध क्षेत्रों से संबंधित वैविध्यपूर्ण एवं संपन्न सामग्री विद्यमान हो, उन भाषाओं का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। परंतु यह तर्क भी अनुभव एवं इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, क्योंकि संस्कृत, प्राकृत, रोमन, हीब्रू जैसी अनेक भाषाओं का भविष्य क्या हुआ, यह तो एक सर्वविदित सत्य है। इन अत्यन्त प्राचीन भाषाओं में प्रस्तुत की गई अपार सामग्री में से थोडी भी सामग्री वर्तमान युग तक आ पाई या नहीं, यह कोई नहीं कह सकता|

देवभाषा मानी जानेवाली संस्कृत में वेद, उपनिषद, अष्टादश पुराण संहिताएँ आदि अपार सामग्री का प्रणयन हुआ, परंतु वर्तमान युग में इस भाषा का प्रयोग कहाँ तक हो रहा है, इसका उत्तर तो सर्वविदित है| यह तो एक अलग बात है कि वर्तमान समाज के उच्चवर्गीय शिक्षित लोग, विशेष रूप से बुजुर्ग लोग या तो इन ग्रंथों को पढ़कर इनमें प्रस्तुत आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक तत्वों का आकलन करके उनका अनुसरण करने का प्रयास करते हैं अथवा स्थानीय भाषाओं में इनके अनुवाद पढ़कर अपना काम चला लेते हैं| भौतिक रूप से उन्नति प्राप्त वर्तमान मनुष्यों के लिये आजीविका प्राप्त करने हेतु उपयोगी न होने के कारण इस भाषा का प्रयोग बिल्कुल शून्य हो गया है|

अब हम भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा मानी जानेवाली हिंदी के संदर्भ को ही लेंगे। हमारी चर्चा का भी यही विषय है कि हिंदी का वैश्विक स्तर पर क्या भविष्य हो सकता है। जब इस संकल्पना पर विचार किया जाता है तो यह विचार अवश्य उत्पन्न होगा कि आखिर इस पर इतना सोच-विचार करना, भव्य अर्थात व्यय भरी संगोष्ठियों का आयोजन करना और चिंतन प्रधान लेखों को शामिल करते हुए विशेषांक प्रकाशित करना कहाँ तक उचित है। मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि यदि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है तो हमें इतना समय लगाकर और इतना व्यय करके इस अवधारणा पर विचार-विमर्श करने की क्या आवश्यकता है? यदि भविष्य उज्ज्वल नहीं है तो मेरे उस मित्र का कहना है कि तब भी ये सारे प्रचार व्यर्थ हैं। इस अवसर पर उसने एक उद्धरण भी दिया था,

“पूत कपूत तो का धन संचय, पूत सपूत तो का धन संचय”

अर्थात् जब किसी व्यक्ति का संतान आदर्श व्यक्तित्व वाला एवं सच्चरित्रवान हों तो उसे उसके लिये संपत्ति का अर्जन करके देने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह स्वयं परिश्रम करके अपनी आजीविका का अर्जन कर लेगा| परन्तु इसके विपरीत यदि वह चरित्रहीन होकर दुर्व्यसनों में फँसा रहेगा, तब भी उसके लिये

धनार्जन करके देने की जरूरत नहीं होती क्योंकि कडी मेहनत से अर्जित धन-संपत्ति देने पर भी वह उसका विनाश कर ही देगा| इसी प्रकार यदि कोई भाषा संपन्न एवं समृद्ध हो तो उसके भविष्य के लिये चिंतित होने की आवश्यकाता नहीं होती और यदि वह अभिव्यक्ति की सामग्री तथा क्षमता से वंचित हो तो उसका भविष्य वैसे ही अंधकारमय होगा।

परंतु भाषा के संदर्भ में ये विचार और तर्क इतने समीचीन प्रतीत नहीं होते। फिर भी भारतीय भाषाओं के इतिहास पर ध्यान देने से हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि भारतीय सामाजिक क्षेत्र में पिछले दो हजार वर्षों से कोई एक विशेष भाषा अधिक समय तक टिक नहीं पाई। कारण जो भी हो संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, उर्दू, अरबी, फारसी, मैथिली, भोजपुरी, अंग्रेजी और उसके साथ-साथ खड़ीबोली आदि अनेक भाषाओं का प्रचलन भारतीय जन जीवन में आवधिक रूप से होता आ रहा है। इतना होते हुए भी आज हिंदी जैसी एक सक्षम भाषा के भविष्य की चिंता इसलिए की जा रही है कि इक्कीसवीं सदी में यह सारा विश्व विज्ञान एवं संचार में हुई अभूतपूर्व प्रगति के कारण एक छोटा-सा गाँव बन गया। इसके पहले जितनी भी संस्कृतियाँ हैं, उनके सम्मिश्रण एवं संगम से एक वैश्विक संस्कृति का आविर्भाव हुआ। इसमें देश-भक्त भारतीयों को अपनी एक भाषा हिंदी के भविष्य के लिए प्रयत्नरत होना अनिवार्य हो गया।

यह कल्पना बड़ी सरलता से की जा सकती है कि सृष्टि के प्रारंभ में इस धरती के मानचित्र पर इतने देश नहीं थे। इतनी अधिक मात्रा में आबादी भी नहीं थी। जैसे-जैसे सभ्यताएँ विकसित हुई वैसे-वैसे देशों की संख्या, उन देशों की सीमाएँ एवं उन सीमाओं की सुरक्षा के लिए मानव मात्र के प्रयत्न भी बढ़ते गए। स्वार्थ भरी मानसिकता के कारण जन समुदाय में उत्पन्न ईर्ष्या और द्वेष के भाव उन्हें संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते हुए युद्ध क्षेत्र में समय-समय पर लाखों-करोड़ों लोगों को कट-मरने के लिए बाध्य किया। मनुष्य मात्र के पार्थिव जीवन के इस दुखद दास्तान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे ले जाने का कार्य करनेवाला इतिहास भी भाषा के सहारे ही अपना आशय संपन्न करने में सफल हुआ।

यह तो एक सर्वविदित बात है कि भाषा मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान का सशक्त साधन है और मनुष्य एक सामाजिक प्राणी भी है| यदि मनुष्य के पास भाषा नहीं होती और वह अपने विचारों का भाषा के माध्यम से आदान-प्रदान नहीं कर पाता तो वह समाज के दूसरे सदस्यों के साथ संबंध कैसे बनाता! तात्पर्य यह है कि भाषा मनुष्य के लिए पारिवारिक और सामाजिक संबंध बनाने का सर्वप्रथम और उत्कृष्ट आधार है| मनुष्य अपनी बातों, अनुभूतियों, संवेदनाओं, प्रतिक्रियाओं और भावनाओं को प्रस्तुत करते हुए समाज के विविध लोगों के साथ अपना नाता जोड़ता अथवा तोड़ता रहता है| इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य, समाज और भाषा ये तीनों ही विश्व-संस्कृति के अविभाज्य अंग हैं|

यह तो एक उल्लेखनीय तथ्य है कि सामाजिक क्षेत्र के विविध आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान और पहनाव ही मनुष्य की सभ्यता के द्योतक होते हैं| इस सभ्यता के साथ जब कुछ विशेष आदर्श, मूल्य और नीतियाँ जुड़ जाते हैं तो मानवीय संस्कृति का स्वरूप निखर उठता है| सामाजिक सभ्यता और विकास के साथ-साथ उससे संबंधित पारिभाषिक शब्दों का विकसित होना अत्यंत सहज है| पारिभाषिक शब्दों के इसी विकास के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भाषा का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होता रहता है|

‘समाज में जैसे-जैसे लोगों की आबादी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह अपने आवास के लिए नए स्थानों की खोज करता रहता है| अपनी आजीविका हासिल करने के लिए तरह-तरह के प्रयास करता रहता है| उसकी इसी प्रक्रिया में पूरी तरह वनों से भरी हुई यह धरती गाँवों, कस्बों, पहाड़ी-इलाकों और नगरों में परिवर्तित होती गयी| सामाजिक क्षेत्र के मनुष्यों में दूरियाँ भी बढ़ती गयीं| जब मनुष्य मात्र को एक विशेष भाषा से अपना काम

चलाना कठिन लगा तो उसने नई भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों और उपबोलियों का विकास किया| भाषा के साथ-साथ अन्य अनेक कारणों से मानव समाज अलग-अलग राष्ट्रों, देशों और राज्यों में विभाजित हो गया और मनुष्यों के बीच दूरी और भी बढ़ती गयी| इसी कारण से मानव मात्र के बीच संचार की आवश्यकता हुई| समय-समय पर संचार संबंधी विविध माध्यम बने, जिन्होंने भाषा का सहारा लेकर मनुष्यों के बीच विकसित इन दूरियों को कम करने का प्रयास किया| सामाजिक प्राणियों में दुनिया भर की घटनाओं से संबंधित जानकारी हासिल करने की जो उत्सुकता बढ़ी उसे तृप्त करने में भी भाषा ने इन संचार माध्यमों की सहायता से अत्यंत सफल प्रयत्न किया|’[1]

अब प्रश्न यह उठ सकता है कि आखिर संसार में इतनी भाषाओं के विकसित होने की क्या आवश्यकता है! इस सन्दर्भ में पाश्चात्य जगत की एक लोक कथा का स्मरण हो आता है| अति प्राचीन काल में इस संसार के अंतर्गत इतनी भाषाएँ नहीं थी| विश्व् भर में मात्र एक ही भाषा रहा करती थी| संसार भर के सभी लोग अन्य लोगों के साथ बडे आराम से अपने विचारों का आदान-प्रदान किया करते थे| इस अत्यंत व्यापक एवं भव्य सृष्टि के निर्माता ईश्वर की आराधना भी की जाती थी| एक बार एक युवक को यह सन्देह हुआ कि इस अनुपम सौन्दर्य पूर्ण सृजन के कारक भगवान आखिर कैसे होगा? उसके आकार एवं स्वरूप कैसे होंगे? इस विषय को लेकर उस समय के युवा वर्ग में काफी विचार विमर्श होने लगा| आखिर वे सब मिलकर एक बुजुर्ग के पास गये और उसके सामने अपनी शंका व्यक्त की तो उस बुजुर्ग ने उन्हें समझाया कि भगवान हमारे ऊपर स्वर्ग में अर्थात् आसमान में रहते हैं| इस पर लोगों ने मिलकर यह तय किया कि सब मिलकर आसमान के लिये सीढ़ियाँ बनायेंगे और ऊपर जाकर देखेंगे कि ईश्वर कैसे होता है!

दूसरे ही दिन आसमान पर जाने के लिये सीढ़ियों का निर्माण प्रारंभ हो गया| ऊपर से भगवान ने यह सब देखा तो हैरान हो गया कि यदि ये सब उसे देखने ऊपर आयेंगे तो सृष्टि, स्थिति एवं लय जैसे उसके सभी कार्यों में व्यवधान पहुंचेगा| उन्हें सीढ़ियों का निर्माण करने से रोकना ही होगा| पर्याप्त चिन्तन मन्थन के पश्चात् उसने यह निर्णय लिया कि कि वे इन लोगों के लिये अलग-अलग भाषाओं का सृजन करेंगे तो उपयुक्त संचार के अभाव के कारण सीढ़ियों का निर्माण कार्य रुक जायेगा| ऐसा सोचकर ईश्वर ने उन सीढ़ियों के निर्माताओं के लिये अलग-अलग भाषाओं का सृजन कर दिया| निर्माण कार्य के लिये कोई बालू मांगता तो पत्थर लाया जाता था, पत्थर मांगता तो पानी लाया जाता था, पानी मांगा जाता तो बालू लाया जाने लगा| परिणामस्वरूप भगवान को देखने के लिये सीढ़ियों के निर्माण का कार्य रुक गया| प्रस्तुत लोककथा से हमें यही तथ्य स्पष्ट होता है कि उपयुक्त संप्रेषण के अभाव में कोई भी निर्माण कार्य संभव नहीं हो सकता और ऐसे संप्रेषण के लिये मानव मात्र के पास उपलब्ध भाषा ही एकमात्र साधन है| परन्तु भाषाओं का वैविध्य इस प्रक्रिया को जो क्षति पहुंचा सकती है उससे मुक्ति पाना भी मानव मात्र के भव्य भविष्य के लिये अनिवार्य है| इसी आशय की पूर्ति हेतु भारत जैसे देश में संपर्क भाषा अथवा राष्ट्रभाषा की अवधारणा का आविर्भाव किया गया|

अब यदि विश्व-भर की संस्कृतियों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डाली जाए तो किसी भी विवेकशील व्यक्ति को यह तथ्य स्पष्ट होगा कि भारतीय संस्कृति अन्य पाश्चात्य संस्कृतियों की तुलना में अधिक संपन्न ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक भी है। प्राचीन काल से लेकर इस संस्कृति के प्रकाश पुंज को चारों दिशाओं में व्याप्त करने का सक्षम कार्य करनेवाली साहित्यिक सामग्री संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में ही नहीं अपितु भारत की अन्य आर्य एवं द्राविड भाषाओं में भी प्रकाशमान है। इनका अध्ययन-अवगाहन करनेवाले किसी भी व्यक्ति को आश्चर्य होगा कि

---

[1] साहित्यिक अवधारणायें : सामयिक सन्दर्भ, लेखक : डॉ एस कृष्ण बाबु, पृष्ट सं 37

उस समय के भौतिक जगत एवं भाव जगत के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत भी अत्यंत प्रभावोत्पादक रहे। वर्तमान युग तक आते-आते पाश्चात्य जगत ने तो भौतिक उन्नति ही नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार के अनुशासन एवं दायित्वपूर्ण व्यवहार को आत्मसात करके अपने परिसर को अत्यंत आकर्षक एवं दर्शनीय बना लिया था। भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप लोगों के बीच की दूरियाँ समाप्त कर दी गईं और पल भर में सारे संसार की यात्रा करके वहाँ की स्थितियों का आकलन भी संभव कर दिया गया। ये सारे कार्य संपन्न भाषाएँ ही कर सकीं, इसमें दो राय नहीं हो सकती। इन्हीं के कारण वैश्विक संस्कृति का रूपायन हुआ और उसके विकास के लिए अनेक दायित्वपूर्ण व्यक्तियों ने अपना सहयोग दिया।

वैश्विक संस्कृति के आविर्भाव के पश्चात हिन्दी की स्थिति तो आशाजनक ही मानी जा सकती है। आज भारत में हिन्दी के प्रति आदर और सम्मान की जितनी भावनाएँ देखी जा सकती हैं, उसकी तुलना में अनेक ऐसे विदेश हैं जहाँ हिन्दी को एक उत्कृष्ट भाषा के रूप में अधिक मान्यता दी गई और जा रही है। हिन्दी के अनेक साहित्यिक ग्रंथों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ और उन भाषाभाषियों ने उन्हें पढकर उनका आनंद उठाया| ‘फ्रेंच और रूसी भाषायें ऐसी हैं जिनमें भारतीय ग्रंथों का अनुवाद बडी मात्रा में किया गया| रूसी लेखक वरान्निकोव का **राम चरित मानस** का अनुवाद क्ल्याणोव का **महा भारत** का अनुवाद इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनेय हैं|’[2] इस प्रकार देखा जा सकता है कि हिन्दी के भक्ति कालीन कृतियों का एवं आधुनिक युग की मिथकीय कथा कृतियों का विश्व भर में प्रचलन होता आ रहा है जो एक देश प्रेमी भारतीय नागरिक के लिये अत्यन्त संतोषजनक यथार्थ है|

वैश्विक धरातल पर हिन्दी के भविष्य को उज्वल बनाने की दिशा में वर्ष 1973 से ही विश्व हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन होता आ रहा है| वास्तव में हमारी हिन्दी हमारे सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में काम करने के लिये राष्ट्रीय सीमाओं को लांघ कर अब तक करीबन बासठ से अधिक देशों में पहुँच गई हैं| विश्व के लगभग दो सौ विश्वविद्यालयों में हिन्दी की विधिवत शिक्षा दी जा रही है| हिन्दी ने अपनी सरलता, सरसता और समग्रता के कारण वैश्विक जन समुदाय के मध्य अपना सुदृढ स्थान बना लिया है| संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी ने भारत के सभी राज्यों को एक सूत्र में जोडा ही है साथ ही वैश्विक स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में भी सफल हो पाई| वर्ष 1973 से प्रारंभ हो कर अब तक 11 (ग्यारह) विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित किये गेये| ‘हिन्दी को विश्व में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के उद्देश्य से ही ये सम्मेलन आयोजित हो रहे हैं| इन सम्मेलनों के आयोजन के मुख्य लक्ष्य वैश्विक धरातल पर शैक्षकीय उन्नयन, सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा हिन्दी का विकास, हिन्दी परिषदों की स्थान स्थान पर स्थापना, विदेशी विश्व विद्यालयों में हिन्दी पीठ का गठन, हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र में मान्यता दिलाना, मॉरिशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना, वार्धा स्थित महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालय में विदेशी हिन्दी विद्वानों को अनुसंधान के लिए शोध छात्रवृत्ती की व्यवस्था आदि हैं|’[3]

तात्पर्य यह है कि वर्तमान युग में वैश्विक धरातल पर ऐसे अनेक प्रयास किये जा रहे हैं जिन के सहारे हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का भविष्य अवश्य देदीप्यमान होगा| ‘सच तो यह है कि हिन्दी आज सभी क्षेत्रीय सीमाओं को तोड चुकी है| क्या पूरब और क्या पश्चिम! क्या देश और क्या विदेश! सभी दिशाओं में यह गतिमान है| देश की

---

[2] अनुवाद : भाषायें और समस्यायें, एन ई विश्वनाथ अय्यर, पृष्ट सं 78

[3] निबंध सुगंधा, डॉ चन्द्र सिंह तोमर, पृष्ट सं 39

केन्द्रीय शक्ति ज्यों ज्यों मजबूत होती जायेगी हिन्दी और भी समृद्ध होती जायेगी|’[4] अत: भारत के प्रत्येक हिन्दी प्रेमी नागरिक का यह दायित्व है कि वह इस देश की केन्द्रीय शक्ति को मजबूत करते जायें और राष्ट्र भाषा हिन्दी का पठन पाठन एवं प्रयोग ही नहीं बल्कि उसका प्रचार प्रसार एवं प्रचलन करते हुए अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय देते रहें|

असंख्य प्रवासी भारतीय, विश्व के विविध देशों में हिन्दी साहित्य का सृजन करके वहाँ के लोगों में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति रुचि को समृद्ध कर रहे हैं| जकिया जुबेरी, सुधा ओं ढींगरा, सुषम बेडी जैसे अनेक कथाकार विश्व भर के विविध देशों में हिन्दी के प्रचलन का प्रयास कर रहे हैं वह अनन्य सामान्य माना जा सकता है| इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ‘समसामयिकि संसार में सकारात्मक संस्कार तो सभी देशों और प्रांतों में विद्यमान हैं| प्रवासी हिंदी कथाकारों की कृतियों के अध्ययन से यही तथ्य स्पष्ट होता है कि संसार के किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में आदर्श भरे संस्कार, उसकी मातृ भूमि अथवा जन्म भूमि की मिट्टी से नहीं, बल्कि वहाँ के लोगों एवं उनके आदर्श चरित्रों से प्राप्त होते हैं| जैसे-जैसे इन संस्कारों का प्रचलन वैश्विक क्षेत्र में बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे सार्वभौम, सांस्कृतिक अंतःचेतना की शीतल सलिला का प्रवाह प्रबल होता जाएगा और कलियुग में भी कृत युग का आविर्भाव होकर ईश्वर को भी चकित करा देनेवाला लोक-कल्याण संभव हो जाएगा|’[5] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रवासी हिन्दी कथाकारों द्वारा सृजित ऐसी सामग्री वैश्विक स्तर स्तर पर न केवल लोकमंगलकारी दिशा में विश्व भर के कल्याण की सक्रिय चेष्टा कर रही है बल्कि हिन्दी के भविष्य को उज्वल बना रही है|

चीन के बाद संसार के विविध देशों के अंतर्गत भारत की ही सर्वाधिक आबादी है। भारतीय समाज में अनेक संपन्न भाषाएँ विद्यमान हैं। इनमें हिंदी का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है। परंतु प्रत्येक हिन्दीतर भाषी जब तक इसे स्वीकार करते हुए और इसे सीखकर इसका प्रचलन करते हुए इसे आगे नहीं ले जाएंगे तब तक इसके भविष्य का उज्ज्वल होना थोड़ा संशयात्मक ही माना जा सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिंदी भाषियों का इस दिशा में कोई दायित्व नहीं है, उन्हें तो और भी सजग होकर इस आशय की पूर्ति के लिए अधिक प्रयत्न करते रहना होगा। हिंदीतर भाषी प्रांतों में हिंदी के पठन-पाठन को सुदृढ़ बनाना होगा। इलेक्ट्रानिक माध्यमों में जब हिंदी के प्रयोग को अधिक महत्व दिया जाएगा तभी इस देश में अंग्रेजी के वर्चस्व की तुलना में हिन्दी का वर्चस्व बढेगा।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी की स्थिति को वैश्विक धरातल पर तो अधिक सबल बनाना आवश्यक है, परंतु इसके पहले देश में इसके प्रयोग, प्रचार-प्रसार एवं प्रचलन के लिए समग्र प्रयास किए जाने चाहिए। संसार में बहुत कम देश ऐसे हैं जिनके संविधान में हिन्दी जैसी एक संपन्न भाषा को इतना महत्व दिया गया हो| भारत में तो राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिये राजभाषा अधिनियम भी पारित किया गया और ऐसे अधिनियम विश्व भर के किसी देश में दिखाई नहीं देते, कारण यही है कि हमारे संविधान निर्माता एवं तत्पश्चात् के राजनेता भारतीय मानसिकता से पूर्णतया परिचित हैं और उन्होंने हिंदी की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए ऐसे कार्य किए हैं। उनके इस कार्य को महत्व देते हुए प्रत्येक भारतीय को अपने राष्ट्रप्रेम एवं अपनी संस्कृति के प्रति सद्भाव का परिचय देते हुए हमारी अपनी भाषा का प्रचलन करना होगा। उन सब को यही बात ध्यान में रखनी होगी कि यहाँ इस देश में कोई भी हिन्दी भाषी या हिन्दीतर भाषी नहीं है, सब के सब हिन्दी प्रेमी हैं। तभी वैश्विक स्तर पर हिन्दी का भविष्य उजवल होगा|

---

[4] भाषा, राष्ट्र भाषा और राजभाषा हिन्दी, डॉ डी सत्यलता, पृष्ट सं 11

[5] प्रवासी हिन्दी साहित्य : बदलते तेवर, संपादक डॉ अनुपमा तिवारी, पृष्ट सं 171